विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुकल-३, बुधवार, तारीख १३-८-१९८०
वचनामृत-४७, ५०, ६२, ७२ प्रवचन-६

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है; वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है - ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनन्द की मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है, परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है। विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है॥ ४७॥

वचनामृत, ४७ वाँ बोल। **त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।** आहाहा! अन्तर जो वस्तु है, त्रिकाली द्रव्य पदार्थ कभी बँधा नहीं है। यदि द्रव्य बँध जाए तो द्रव्य का अभाव हो जाए। आहा..! वस्तु यदि बन्ध में आ जाए, पर्याय में-बन्ध में आ जाए तो पर्याय मलिन होती है, रूप ही बदल जाए, वैसे यदि द्रव्य का अभाव हो जाए। आहा..! मुक्त न रहे तो वस्तु का नाश हो जाए। पण्डितजी! थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! त्रिकाली ध्रुव तीनों काल रहनेवाली महासत्ता, चैतन्य स्वभाववाली सत्ता द्रव्य कभी बँधा नहीं है।

मुक्त है... आहाहा! यह बात बैठनी... राग से भी भिन्न और पर्याय से लक्ष्य में लेना, दया, दान का राग बन्धन का कारण (है)। निर्मल पर्याय से वस्तु को लक्ष्य में लेना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ कभी किया नहीं और वस्तु की प्राप्ति हुई नहीं। मान लिया सुनकर-पढ़कर कि अपने मानते हैं और ऐसा है। अन्तर अनुभव में आना चाहिए वह अनुभव में नहीं आया। वह यहाँ कहते हैं कि **मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,...** बन्ध और मुक्त दो पर्याय, वह तो व्यवहारनय का विषय है। त्रिकाली मुक्त है, वह निश्चय

का विषय है। त्रिकाली मुक्त है, वह निश्चय का विषय है और बन्ध-पर्याय में बन्ध एवं मुक्त है, दोनों व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! व्यवहारनय का विषय है तो छूट सकता है। निश्चय के अवलम्बन से वह छूट सकता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! भाषा तो आ जाए, परन्तु अन्दर भाव में उतारना अलौकिक बात है। अनन्त काल से अनन्ता-अनन्ता पुद्गल परावर्तन महाविदेह में किये। वहाँ भगवान की मौजूदगी, हमेशा मौजूदगी (रहती है)। आहाहा! वहाँ भी अनन्त भव करके अनन्त परावर्तन किये। समवसरण में अनन्त बार गया, अनन्त बार सुना परन्तु जो चाहिए, मुक्तस्वरूप है, उसे ओर उसकी दृष्टि गई नहीं। आहा..! उस ओर उसकी दृष्टि गई नहीं। आहाहा!

मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,... आहाहा! वह तो दोनों पर्याय है। बन्धन और मुक्त तो पर्याय है। पर्याय तो व्यवहारनय का विषय है। आहा..! त्रिकाली चीज़ जो ध्रुव है, वह उपादेय चीज़ है। अंगीकार करने योग्य, स्वीकार करने योग्य वह एक ही चीज़ ध्रुव है। व्यवहारनय से वह पर्याय है, बन्ध और मोक्ष। **जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है...** अपनी लार में बँधी है। अपने मुँह में से लार निकालकर बँधती है। आहा..! **वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...** मकड़ी छूटना चाहे तो छूट सकती है। क्योंकि अपनी लार निकालकर बँधी है।

जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जञ्जाल में फँसा है... आहाहा! **परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है;...** मनुष्यरूप से तो नित्य है। चाहे जो भी उपाधि में जाए, मनुष्य मिटकर पशु हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनेक प्रकार के काम करने पर भी मनुष्यपना पलटकर उस काम में प्रवेश नहीं करता और वह काम आत्मा में प्रवेश नहीं करता। त्रिकाली मुक्तस्वरूप में व्यवहाररत्नत्रय का राग का भी अन्दर प्रवेश नहीं है। आहाहा! सीधा ध्रुव स्वरूप है, उसे सीधा पकड़ने में आये तो वह पकड़ सकता है। बाकी कोई क्रिया की, यह किया, वह किया, इतना जानपना करने के बाद पकड़े, वह सब बात है। आहाहा!

मनुष्यरूप से छूटा है;... क्या कहते हैं? जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी होने पर भी लार से छूटना चाहे तो छूट सकती है। अपनी स्वतन्त्रता है। ऐसे मनुष्य चाहे कोई भी उपाधि में हो, परन्तु मनुष्यपना नहीं जाता। और वास्तव में तो मनुष्य उसे कहते हैं,

गोम्मटसार में कहते हैं, ज्ञायते ईति मनुष्य। जो यह आत्मा भगवान है, उसे जाने, वह मनुष्य है। आहाहा! बाकी मनुष्यस्वरूपे मृगा चरंति। आहाहा! अष्टपाहुड में वहाँ तक कहा है, अष्टपाहुड में। जिसको अन्दर आत्मा क्या चीज़ है, उसकी अन्दर दृष्टि और ज्ञान नहीं है, वह चलता मुर्दा है। आहाहा! अष्टपाहुड में है। चलता मुर्दा, मुर्दा है। अन्तर चैतन्यज्योत अनन्त गुण का भण्डार पूरा भरा हुआ, उसकी तो नजर नहीं है, उसका वेदन नहीं है, उसका अनुभव नहीं है। उस ओर का लक्ष्य हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आये। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जब तक नहीं आता है, तब तक अन्दर नहीं गया। बाहर घूमता रहता है। आहा..! समझ में आता है? अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जब तक नहीं आता है, तब तक वह बाहर में भटकता है। आहाहा! कठिन बात है।

मनुष्य कोई भी काम करे, परन्तु मनुष्यपना चला नहीं जाता। वैसे आत्मा ध्रुव, पर्याय में जितना भी हो, निगोदपर्याय हो, या नौवीं ग्रैवेयक में जानेवाला दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु हो, वस्तु तो वस्तु है। वस्तु में कोई फेरफार होता नहीं। उसमें कभी फेरफार होता ही नहीं। आहाहा! अन्तर में बैठना (चाहिए)। मार्ग तो आसान है। अन्तर वस्तु गहराई में प्रभु, पर्याय के पाताल में, जो निर्मल पर्याय है, उसके अन्दर पाताल में पूरा द्रव्य भरा है। उसकी मुक्त दशा है। मुक्त है तो मुक्त हो सकता है। आहाहा! जो मुक्त है, ऐसा अन्दर से स्वीकार करे, अन्दर से, तो मुक्त हो सकता है। है, प्राप्त की प्राप्ति है। जो है, वह मिलता है। नहीं हो, वह मिलता है, ऐसा तो है नहीं। आहाहा!

वैसे ही जीव... मनुष्य का दृष्टान्त दिया न? मनुष्य कितने भी काम करे, फिर भी मनुष्य ही कहने में आता है। मनुष्य पलटकर पशु नहीं हो जाता। **वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है,...** आहाहा! सूक्ष्म विकल्प। वहाँ तक बात ली है, १४२ गाथा-समयसार। मैं ज्ञायक हूँ, मैं अबद्ध हूँ। १४-१५ गाथा। अबद्धस्पृष्ट हूँ, ऐसा विकल्प है। आहाहा! उस विकल्प से कहीं आत्मा मिलता नहीं। आहा..! १४-१५ गाथा में अबद्धस्पृष्ट, अबद्धस्पृष्ट (आता है)। मुक्त है और पर के साथ स्पर्शित नहीं हुआ। आहाहा! **वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है...** आहाहा! यह प्रयत्न कोई बाहर की बात में नहीं है। बाहर का जानपना हो, उससे काम नहीं

होता। अन्तर वस्तु से काम होता है। आहाहा! अन्तर में स्वयं मुक्त ही है। **ऐसा ज्ञात होता है।** ऐसा अन्तर में पहले भान होता है।

चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनन्द की मूर्ति (है)। आहा..! चैतन्यप्रभु ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। मूर्ति अर्थात् ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। ज्ञान त्रिकाली, आनन्द त्रिकाली उसस्वरूप ही है। आहाहा! **परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है।** ऐसी चीज़ है। प्रत्येक (जीव) भगवान आत्मा है अन्दर में।

समयसार में ३८वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा, अरे.. प्राणियों! सब आ जाओ, लोकालोक के ज्ञान में आ जाओ अन्दर। ३८वीं गाथा में कहा है। आहाहा! सामूहिक निमन्त्रण (दिया है)। पूरी दुनिया आ जाओ। ओहो..! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पूरी दुनिया उसमें जानने में आ जाओ। और वह जाननेवाला मुक्त रहो। आहा..! कोई भव्य-अभव्य ऐसा भेद भी नहीं किया। सब लोक आ जाओ। अपनी दृष्टि से सबकी बात की है। सब प्राणी अपने ज्ञान में लोकालोक जानने में अन्दर आ जाओ। आहाहा! ऐसी अन्दर चीज़ भरी है। पूरी भरी है। आहा..!

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है,... विभाव के बहुत प्रकार है। सूक्ष्म विभाव अन्दर में वास्तविक तत्त्व जो है, वह अन्दर ख्याल में न आवे तो अन्दर कुछ भी सूक्ष्म शल्य ख्याल में आता नहीं। उपयोग में ख्याल में आता नहीं। वह उपयोग ... है। क्या कहा? जो सूक्ष्म उपयोग से आत्मा ख्याल में आना चाहिए, वह आता नहीं। उपयोग सूक्ष्म नहीं है, स्वरूप ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बहिन कहेगी, बहिन के शब्दों में बहुत जगह... उनको शरीर में ठीक नहीं। बहिन तो जो है, वह है। स्त्री का देह आ गया है। बाकी उनकी दशा कोई अलग जाति है। दुनिया को बाहर से मालूम पड़े नहीं। दुनिया तो बाहर का जानपना और बाह्य त्याग से देखे, इसलिए उसे कीमत करनी नहीं आती। आहाहा!

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे... आहाहा! **तो मुक्त ही है।** प्रयत्न करे अन्दर में। कोई दूसरा उपाय नहीं है, प्रभु! अन्दर स्वरूप में प्रयत्न (करना), वही उसका उपाय है। जैसे राग में प्रयत्न अनादि से (करता है), राग का वेदन

और करना, कर्ता होकर करके वेदन करना। आहा! भले शुभभाव हो, वह भी जहर है। उसका कर्ता होकर वेदन करना, वह अनादि से चला आ रहा है। मुक्तस्वरूप है न भगवान, तो उसमें जा। मुक्त ही है। प्रयत्न कर। **द्रव्य बँधा नहीं है।** द्रव्य कभी बँधा नहीं है। आहाहा! वस्तु है, सत्ता है, मौजूदगी चीज़ है, महासत्तावान है, महा जिसका अस्तित्व है। आहाहा! वह वस्तु कहाँ जाए? वह वस्तु बँधती भी नहीं। आहा..! उसका अस्तित्व-मौजूदगी बँधा ही नहीं। मुक्तस्वरूप ही भगवान है। आहाहा! ऐसा अन्दर दृष्टि में आना और अनुभव करना, वह कोई अलौकिक बात है। आहाहा! बाहर में पण्डिताई में वह भले ही न आये। परन्तु वस्तु स्वयं अन्दर प्राप्त कर ले। दुनिया में बाहर की गिनती में नहीं आये। आहा..! ऐसी चीज़ है। ४७ हुआ न। किसी ने लिखा है, ५०। ४७ के बाद ५० है।

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर, जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा। सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल॥ ५०॥

तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर... आहाहा! है? तू सत् की गहरी-गहरी जिज्ञासा कर। परमात्मा पर्याय के पीछे विराजता है। आहाहा! पर्याय के तल में विराजता है। पर्याय है, उसके तल में विराजता है। आहाहा! सत् की गहरी जिज्ञासा-गहरी जिज्ञासा, तीव्र जिज्ञासा कर, ऐसा कहते हैं। गहरी अर्थात् तीव्र। आहाहा! उसके बिना चैन पड़े नहीं। आत्मानुभव बिना चैन नहीं पड़े, ऐसी गहरी-गहरी जिज्ञासा कर। **जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;...** आहाहा! अन्तर में तो प्रयत्न तो तब चलेगा कि जैसी वह चीज़ है, उस ओर यथार्थ ज्ञान करके झुक जाना, तब उसका अनुभव होता है। तब तक अनुभव होता नहीं। आहाहा!

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मार्ग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप।

क्योंकि वस्तु मुक्तस्वरूप है। उसका अनुभव हुआ तो यहाँ कहा कि वह तो

मोक्षस्वरूप ही हो गया। वस्तु मुक्त (स्वरूप) थी, ऐसी प्रतीत, अनुभव में-वेदन में आ गयी। वेदन में आ गयी, उसका सवाल है। आहाहा! वेदन में न आवे, तब तक उसने स्पर्श नहीं किया, आत्मा को उसने स्पर्श नहीं किया। आहाहा!

प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर... मति जो बाहर की ओर झुकती है, वह अन्तर में झुके। और सरल, मति सरल एवं सुलटी। वक्रता तोड़कर सरल हो जाए और सुलटी दशा हो जाए। ऐसी **सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जाएगा।** आत्मा में परिणमित हो जाए। आहाहा! आत्मा जो परमपारिणामिकस्वभाव, परमपारिणामिक-भावरूप स्वभाव तुझे वहाँ मिलेगा। आहाहा! वह परिणमित हो जाएगी। पर्याय में परमपारिणामिकभाव की अनुभव में पर्याय होगी। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

बहिनों में बोले होंगे, अनुभव में से यह सब आया है। आत्मा का आनन्द का अनुभव, उसमें से यह वाणी निकली है। साधारण मनुष्य को लगे, वह का वही आता है, ऐसा लगे। परन्तु उसमें अन्तर है। कहाँ-कहाँ अन्तर है, वह अन्दर ...

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे... सत् के संस्कार, ऐसे संस्कार डालना कि कभी पलट नहीं जावे। कदाचित् इस भव में समकित प्राप्त न हो तो दूसरे भव में (प्राप्त हो जाए), ऐसे सत् के संस्कार डालना। मैं अखण्ड हूँ, मुक्त हूँ, अभेद हूँ, ज्ञायक हूँ, परम स्वाभाविक पारिणामिकस्वभाव हूँ। ऐसा संस्कार यथार्थ में, यथार्थ में (डालना)। संस्कार तो डालना है, परन्तु यथार्थ नहीं हो तो उल्टा हो जाए। यथार्थ संस्कार अन्दर डाले... आहाहा! **तो अन्त में अन्य गति में भी...** कदाचित् इस भव में प्राप्त न पावे और इसके संस्कार अन्दर में डाले.. आहाहा! तो सत् प्रगट होगा। **अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा।** आहाहा! सातवीं नरक के नारकी को अन्दर प्रवेश करते समय मिथ्यात्व है। नरक में जाते समय मिथ्यात्व है। बाद में अन्दर में समकित प्राप्त करता है। सातवीं नरक का नारकी। वेदना का पार नहीं, भाई! उसके एक क्षण के दुःख, परमात्मा कहते हैं, करोड़ भव और करोड़ जीभ से कह सके नहीं। ऐसे दुःख में प्राणी समकित प्राप्त करता है। यहाँ लोग कहते हैं कि हमें कुछ अनुकूलता हो तो हम निवृत्ति लें। व्यापार आदि पुत्र बराबर चलाये तो हम निवृत्ति लें। उसको दुःख का पार नहीं है, बापू! आहाहा! शरीर में ज्वाला उठे, शीत व्याधि है न? शीत व्याधि। पहली नरक में उष्ण है। अन्तिम नरक में शीत है। बहुत शीत। शीत

का एक कण यहाँ आये तो आसपास के हजारों लोग मर जाए। आहाहा! ऐसी शीत में तैंतीस सागर निकाले। एक तैंतीस सागर नहीं, ऐसे अनन्त तैंतीस सागर निकाले, भाई! विचार भी कहाँ करता है कि मैं कौन हूँ? और मुझे क्या करना है? आहाहा!

अनन्त बार तैंतीस सागर की स्थिति (में) आत्मा के भान बिना गया। प्रभु! उस दु:ख की व्याख्या भगवान करते हैं। आहाहा! उसके दु:ख को देखकर, वहाँ तो कौन देखनेवाला है, परन्तु उतना दु:ख हे कि उसके दु:ख देखकर दूसरे को आँख में से आँसु आये। इतना दु:ख। इतने दु:ख में समकित प्राप्त करता है। ऐसा नहीं है कि इतना दु:ख है तो निवृत्ति चाहिए, यह चाहिए और फलाना चाहिए। आहा..! ऐसे असंख्य समकिती सातवीं नरक में हैं। आहाहा! अर्थात् प्रतिकूल संयोग पर नजर मत कर। अनुकूल संयोग पर नजर मत कर। दोनों चीज़ ज्ञेय है। अनुकूल-प्रतिकूलता की कोई छाप अन्दर नहीं मारी है। ज्ञेय वस्तु है। एक आत्मा के सिवा सब ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञेय में दो भाग है नहीं कि यह ज्ञेय ठीक है और यह ज्ञेय अठीक है। ज्ञान में सब ज्ञेय जानने लायक है। वह भी व्यवहार है। ज्ञान पर को जाने, वह भी व्यवहार है। बाकी निश्चय से तो स्वयं को जानता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। ऐसे अनन्त जीव ने प्राप्त कर लिया। अनन्त सिद्ध हो गये हैं। नहीं हो सके, ऐसा नहीं है। अनन्त हो गये हैं, इसलिए अनन्त के साथ तू आ जा, प्रभु! आहाहा! तेरी शक्ति अनन्त महा है।

सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल। आहाहा! वर्तमान में भले तू प्राप्त न कर सके, परन्तु उसका संस्कार, ऐसे संस्कार डाल अन्दर... एक बात ऐसी है, एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय आती नहीं। वर्तमान पर्याय का संस्कार दूसरी पर्याय में आता नहीं। फिर भी यहाँ आता है, ऐसा लिया है। जिसका पुरुषार्थ ... नयी पर्याय में पूर्व की पर्याय का संस्कार आया नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। पूर्व पर्याय में जो संस्कार था, वह नयी पर्याय में नहीं आता। ऐसा प्रगट होता है उसमें। जैसा यह संस्कार है, वैसा नया संस्कार अपनी पर्याय में प्रगट होता है। पूर्व की पर्याय व्यय हो जाती है। संस्कार किसमें डाले? वह तो व्यय हो जाती है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वस्तु का स्वरूप सूक्ष्म है।

यहाँ कहते हैं, दृढ़ संस्कार डालेगा तो अन्य गति में प्रगट होगा। एक पर्याय दूसरी

पर्याय में तो जाती नहीं। और यह इस गति में से दूसरी गति में प्राप्त करे, वह व्यवहार से बात की है। पर्याय में संस्कार दृढ़ है तो दूसरी पर्याय में भी दृढ़ संस्कार अपने से उत्पन्न होगा, ऐसा जीव लिया है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय तो ... होती है।

मुमुक्षु :- पर्याय नष्ट हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- दूसरी पर्याय में उतने ही वजनवाला संस्कार उत्पन्न होगा। ऐसी पर्याय की योग्यता है। सूक्ष्म बात है। पर्याय तो व्यय होगी। तो उत्पाद में वह तो आती नहीं। आहाहा! परन्तु जितना संस्कार का जोर था, उतने जोरवाली नयी पर्याय उत्पन्न हो चुकी है। जिसको अन्दर में लगी है, अन्तर में लगनी लगी है, उसको तो दूसरी पर्याय में वह संस्कार प्रगट हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो एक पर्याय दूसरी पर्याय में जाती नहीं। आहाहा! जातिस्मरण होता है। जातिस्मरण में पूर्व की पर्याय वर्तमान में याद आती है। वह वर्तमान में पुरुषार्थ का काम है। पूर्व का कारण नहीं। वर्तमान में पुरुषार्थ है, वह उसमें आता है। उसका यह काम है। आहाहा!

इसलिए सत् के गहरे संस्कार डाल। ऐसा कि एकदम तू प्राप्त नहीं करे तो उलझन में मत आना। अन्दर में भगवान अकर्ता-अभोक्ता, सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का ढ़ेर है, ऐसे संस्कार डाल। आहाहा! आहाहा! वह ५० में आया। ५० के बाद ६२।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

६२। श्रवण करने में फर्क है। **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,...** आहाहा! क्या कहना है? गूढ़ बात है, गूढ़ है। चाहे तो भगवान की वाणी सुनने मिले, परन्तु उससे

आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? भगवान की वाणी तो पर है। उससे यहाँ ज्ञान हो जाए, ऐसा है नहीं। ज्ञान में और वाणी में दो में अभाव है। उससे नहीं होता... ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण कर। मात्र श्रवण नहीं। ज्ञायक के लक्ष्य से। अन्तर है। ज्ञायकस्वरूप.. प्रवचनसार में कहा, पहला अधिकार पूरा होने के बाद, दूसरे अधिकार में (कहा), शास्त्र का अभ्यास करो। आगम का अभ्यास करो, परन्तु स्वलक्ष्य से। अपना लक्ष्य रखकर। ध्येय-ध्येय भगवान है। आहाहा! उसके ध्येय बिना जो होता है, सब बिना अंक के शून्य हैं। बहिन यहाँ वह बात कहती है।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... उससे ज्ञान नहीं होता। श्रवण करने में तो त्रिलोकनाथ की वाणी भी अनन्त बार श्रवण की। **ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,...** आहाहा! श्रवण करने में भी अपने ज्ञायक के लक्ष्य से। मात्र श्रवण करने के लिये श्रवण नहीं। शब्द में बड़ा अन्तर है। बहिन का कहने का आशय यह है कि ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण कर तो होगा। उसके लक्ष्य बिना मात्र श्रवण से कुछ लाभ नहीं होगा। आहाहा! अपूर्व वाणी है। आहाहा! दुनिया बाहर की बातों में पड़ी है। अन्तर भगवान आत्मा, उसके लक्ष्य बिना श्रवण करे, कोई भी श्रद्धा करे, परन्तु इस लक्ष्य के बिना कुछ लाभ होगा नहीं। आहाहा! लक्ष्य तो भगवान आत्मा का होना चाहिए। श्रवण में, श्रद्धा में, रमणता में, अरे..! पूरा दिन खाने-पीने में लगनी तो वहाँ लगनी चाहिए। ध्रुव स्वरूप मेरा प्रभु, पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, ऐसी उसकी धुन (लगनी चाहिए)। आहाहा!

धर्मी की धुन अपने ध्रुव में लगती। आहा..! धर्मी की धुन धैर्य से.. पन्द्रह बोल लिखे हैं। धैर्य से धखाव। एक बार तेरह शब्द लिखे थे। सब ध-ध। धर्म के लक्ष्य से ध्येय को ध्यान में लेकर धैर्य से धखाव। वह साधक की दशा (है)। साधक की धुन धखाव अन्दर। और अन्दर में जाने का प्रयत्न इतना कर कि प्राप्त होकर छुटकारा हो। प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहा..! शब्दों में ऐसा कहने में आये, उसका भाव है वह तो (अनुभवगोचर है)। **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से...** ध्रुवधाम ना ध्येय...

मुमुक्षु :- ...ध्रुवधामना ध्येयना ध्याननी धखती धूणी धगश अने धीरज थी धखाववी ते धर्मनो धारक धर्मी धन्य छे। (ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धूनी धगश और धीरज से लगानेवाला वह धर्म का धारक धर्मी धन्य है।)

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब ध। एक बार यह बनाया था। आहाहा! धर्म के ध्येय के लक्ष्य से पर्याय में धुनी धखानी। लगन लगानी, लगन। आहाहा! उनके पास निकला। कौन-सा हुआ?

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... भाई! यह शब्द कहा, उसका हेतु क्या है? श्रवण करना, वह कोई चीज़ नहीं है। श्रवण तो अनन्त बार हुआ और अनन्त बार नौ पूर्व का ज्ञान भी हुआ। अनन्त बार ग्यारह अंग का ज्ञान हुआ। परन्तु ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण किया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- .... भगवान के समवसरण में...

पूज्य गुरुदेवश्री :- अनन्त बार गया। भगवान के समवसरण में अनन्त बार प्रभु की आरती उतारी। हीरा की थाली, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल। हीरा की थाली, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) प्रभु की आरती की। उसमें क्या हुआ? वह तो पर है। भक्ति का भाव है तो शुभराग है। उससे धर्म होता है या उसके कारण से कुछ-कुछ संस्कार डलेंगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! संस्कार कोई दूसरी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे,...** परन्तु ज्ञायक के लक्ष्य से, हों! अन्दर **मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो,...** अन्तर की लगनी लगी हो, अन्तर में ध्रुव को-ध्येय को ध्यान में लेकर धैर्य से काम लेता हो। **तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है।** कदाचित् इस भव में सम्यग्दर्शन न हो, तो सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। समकित की सन्मुखता। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। सम्यक् सन्मुखता। लिखा है। आहाहा!

अन्दर दृढ़ संस्कार डाले,... अपने स्वभाव के सिवा सब ओर की चिन्ता छोड़कर, सब ओर का झुकाव छोड़कर अपने चैतन्य में झुकना, उसके संस्कार डालना-संस्कार डालना। **उपयोग एक विषय में न टिके...** कदाचित् अन्दर में उपयोग में ज्ञान में लक्ष्य में न ले तो श्रद्धा में लक्ष्य में रखना, शान्ति में लक्ष्य बदलना, आनन्द में बदलना, उपयोग को अन्दर रखना। लक्ष्य में गुण कोई भी पलटो। उपयोग के लक्ष्य में कोई भी गुण लक्ष्य में

लो, लक्ष्य भले पलटे, उपयोग तो वहाँ रहता है। आहाहा! ऐसी बात है। **अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,...** आहाहा! भगवान आत्मा को पकड़ने को सूक्ष्म (उपयोग करे)। क्योंकि शुभभाव को भी अति स्थूल कहा। पुण्य (-पाप) अधिकार में। पुण्य (-पाप) अधिकार में शुभभाव चाहे जितने हो, पंच महाव्रतादि के, लेकिन वह अति स्थूल है। यहाँ उससे हटकर सूक्ष्म उपयोग करे। कठिन बात है। अन्दर की बात है। अति स्थूल विषय—शुभ उपयोग तो अति स्थूल है। पुण्य-पाप अधिकार में, समयसार में है। यह सूक्ष्म। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,... उपयोग अर्थात् आत्मा की ज्ञान पर्याय। उस पर्याय को अन्दर में पकड़ने की सूक्ष्मता करे। स्थूलता में वह पकड़ में नहीं आता। स्थूल उपयोग में तो राग आता है। आहाहा! सूक्ष्म उपयोग ऐसा करे कि **उपयोग में सूक्ष्मता करते करते,...** करते, जानने-देखने की पर्याय को सूक्ष्म करे। स्थूलपना छोड़ते-छोड़ते, सूक्ष्म करता है। आहाहा! यह कार्य है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह चीज़ है। बाकी सब बातें हैं।

मुमुक्षु :- उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में लगावे तो अन्य में कहाँ लगावे?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अन्य में अर्थात् दूसरे गुण में। एक ज्ञान लक्ष्य में न रहे तो श्रद्धा पर लक्ष्य जाए। गुण बदले। अपने में गुण है तो गुण पर बदले। आहाहा! पर में पलटे, ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! बहिन तो बोले होंगे, उसे लिख लिया था। उसमें यह आया।

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए... आहाहा! यह उपाय है। कोई पूछता है न? समकित कैसे प्राप्त होता है? रात्रि को पूछते थे। प्रश्न था। **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े,...** आहाहा! सूक्ष्म उपयोग, जिससे आत्मा पकड़ में आये, ऐसे पकड़कर अन्दर गहराई-गहराई-गहराई में जाना। पर्याय को ध्रुव में ले जाना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जो पर्याय बाह्य है, उसको अन्तर ले जाना। आहाहा! **आगे बढ़े,...** अन्दर सूक्ष्मता करके आगे बढ़े। आहा..! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** ऐसा क्रम करे, उसको सम्यग्दर्शन मिलता है।

मुमुक्षु :- यह करण परिणाम की बात है क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- परिणाम की। कर्म नहीं।

मुमुक्षु :- सम्यक् सन्मुख के विषय में करण परिणाम आते हैं न ? वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- करण-फरण नहीं, यहाँ तो शुद्धात्मा के अभिमुख। शुद्धात्मा के अभिमुख। करण, देशनालब्धि आदि आयी है। संस्कृत में पाठ ऐसा आया है, जयसेनाचार्य में कि शुद्धात्म अभिमुख। शब्द रखकर फिर (कहा), शुद्धात्म अभिमुख, ऐसा पाठ है। सब देखा है न। शुद्धात्म अभिमुख परिणाम करना। आहाहा! समझ में आया ? करण और कर्म उसमें से निकालते थे। कान्तिलाल है न ? कान्ति शिवलाल। पोरबन्दरवाले। उसमें से निकालते थे, देखो! शुभभाव से समकित होता है। करण, देशनालब्धि, क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि धर्म का कारण है, ऐसा निकालते थे। पत्र में डालते थे। इस बार १५वीं गाथा पढ़ी। प्रभु! जैनशासन किसको कहें ? सुना। जिनशासन। अबद्धस्पृष्ट। भगवान कर्म से, राग से अबद्ध है अर्थात् मुक्त है। पर का स्पर्श नहीं। अनन्य है। जो वह है, वह है और संयोगी चीज़ भाव विकारादि से रहित है और पर्याय में अनेकता है, उससे भी रहित है। आहा! उसको जो अन्तर में देखे, उसने जैनशासन देखा।

मुमुक्षु :- जो आत्मा को देखे, वह जैनशासन को देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- जैनशासन देखे। विरोधी थे। बहुत साल से विरोधी थे। पत्र में विरोध करते थे। यह सुना तो कहा, महाराज! हमें सच्चा दिगम्बर बनाया। हमें सच्चा दिगम्बर बनाया, झूठे थे। कान्तिलाल ईश्वर है। पत्र निकालते हैं। पढ़ा बहुत है। षट्खंडागम आदि बहुत पढ़ा है, बहुत वाँचन। बड़ा पत्र निकालते हैं। विरोध करते थे। १५वीं गाथा में जैनशासन की व्याख्या करते-करते (कहा), जैनशासन किसको कहना ? जैनशासन कोई गुण-द्रव्य नहीं है, जैनशासन पर्याय है। तो जो द्रव्य है अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उसका स्पर्श करके वेदन करना, वह जैनशासन है। उसमें करण फलाना और इस शुभभाव से धर्म-समकित होगा, ऐसी बात कहीं नहीं है। बाद में बदल गया, बहुत साल से विरोध था। शुभभाव से होता है, देखो, इसमें लिखा है। समकित प्राप्त करने में पाँच कारण है। विशुद्धि आदि है। बापू! वह तो एक निमित्त से कथन है। बाकी उसका अन्तिम शब्द संस्कृत में

(ऐसा है), शुद्धात्म अभिमुख परिणाम, ऐसा पाठ है। शुद्ध जो आत्मा, उसके सन्मुख परिणाम। पर से विमुख और स्व से सन्मुख। इस अभिमुख परिणाम से समकित होता है। है न? आहाहा! कोई कहे कि करणलब्धि, देशनालब्धि आदि सब आता है न? क्षयोपशम, विशुद्धि आदि आता है, सब हो। परन्तु दृष्टि शुद्ध पर गये बिना... आहाहा! शुद्ध का अनुभव नहीं होगा। बाकी क्रियाकाण्ड का शुभराग लाख शुभराग करे, उससे समकित प्राप्त नहीं करेगा। आहाहा!

उपयोग को सूक्ष्म करे **आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। ६२ हुआ न? ६२ के बाद ७५।

जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता। जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती राजा को बाहर निकलना सुहाता ही नहीं; वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं, उन्हें बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है; आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है। जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है॥ ७५॥

७५। है ७५? **जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है,...** आहाहा! चैतन्यधाम। स्वयं ज्योति सुखधाम। स्वयं ज्योति है, चैतन्य जलहल ज्योति। अनादि स्वयं ज्योति और सुखधाम। सुख का स्थान वह है। सुख की उत्पत्ति का स्थान-क्षेत्र आत्मा है। आहाहा! आनन्द की उत्पत्ति का क्षेत्र (चैतन्यधाम है)। जमीन दो प्रकार की है। एक साधारण जमीन होती है। क्या कहते हैं? कुलथी, कुलथी होती है। वह जमीन साधारण होती है। और एक जमीन में चावल उगते हैं, वह जमीन बहुत अच्छी होती है। चावल। चावल की जमीन पत्थर हो, वहाँ नहीं होती। उस जमीन में अन्तर होता है। देखा है न। हमारे वहाँ एक है। चावल का ... भी है और... क्या कहते हैं? कुलथी, कुलथी आती है न? कुलथी अनाज। वहाँ दोनों होते हैं। हमारे वहाँ से पास में है। क्षेत्र का अन्तर है। ऐसे भगवान के क्षेत्र में अन्तर है। उसके क्षेत्र में तो आनन्द की पकता है। आहाहा! उसके क्षेत्र में दुःख और मिश्रता नहीं होती। आहाहा! भाई! वह तो अन्दर से विश्वास आना चाहिए न।

आहाहा! यह कोई बाहर से मिल जाए ऐसा नहीं है। आहा..! अपूर्व पुरुषार्थ है।

यहाँ वह कहा है। कौन-सा है? ७५। **जिन्होंने चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये...** आहाहा! चैतन्यधम का समकित में भान हुआ, वे स्वरूप में ऐसे सो गये हैं अर्थात् स्वरूप में ऐसे एकाकार हो गये हैं कि **बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करने के सिवाय बाहर किसी भी विकल्प में आना अच्छा लगता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। चैतन्यधाम को पहिचान लिया है, उसकी बात है। आहाहा! कैसे प्राप्त हो, वह तो पहले आ गया। आहाहा!

चैतन्यधाम को पहचान लिया है, वे स्वरूप में ऐसे सो गये... आनन्द में लीन। बाह्य शुभाशुभ परिणति भी होती है, परन्तु अन्तर में लीन है। आहाहा! अन्तर में ध्येय, ध्रुव का ध्येय कभी छूटता नहीं। ध्रुव की दृष्टि कभी छूटती नहीं। आहाहा! समकित लड़ाई में हो तो भी उसका ध्रुव का ध्येय वहाँ से हटता नहीं। ऐसी बात है अन्दर की। आहा..! **स्वरूप में ऐसे सो गये कि बाहर आना अच्छा ही नहीं लगता।** अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान, उसका अन्दर भान हुआ, अनुभव हुआ तो बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता। आहाहा!

जैसे अपने महल में सुख से रहनेवाले चक्रवर्ती राजा को बाहर निकलना सुहाता ही नहीं; वैसे ही जो चैतन्यमहल में विराज गये हैं,... आहाहा! चैतन्य असंख्य प्रदेशी महल में भगवान अन्दर में विराजकर, उसका अनुभव करके उसमें रहते हैं। आहाहा! बाहर में तो रागादि से काम करते हैं परन्तु अन्दर में दृष्टि का धाम वहाँ पड़ा है। **बाहर आना कठिन लगता है, भाररूप लगता है;...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में से निकलना भार लगता है। **आँख से रेत उठवाने जैसा दुष्कर लगता है।** आहाहा! आँख से रेत को उठाना। ऐसे धर्मी को चैतन्यधाम की दृष्टि लगी है, धाम का अनुभव हुआ है, उसको बाहर की चीज़ बोझा लगती है, भार लगता है। कैसा?

जो स्वरूप में ही आसक्त हुआ, उसे बाहर की आसक्ति टूट गई है। स्वरूप में ऐसा लीन हुआ है, भले लड़ाई हो, काम विषय की वासना में हो, परन्तु अन्दर की दृष्टि में धुन लगी है, वह हटती नहीं। ध्येय में ध्रुव का परिणमन हुआ, वह परिणमन कभी हटता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)